

# व्यवस्था परिवर्तन – एक टिप्पणी

राजकुमार भाटिया

26 जनवरी 2000 को भारतीय गणतंत्र के 50 वर्ष पूरे होने के संदर्भ में भारत सरकार ने न्यायमूर्ति वैकटाचलैया की अध्यक्षता में एक संविधान समीक्षा आयोग गठित किया जिस पर देश में एक लंबी बहस चली। निस्संदेह सरकार के द्वारा उठाया गया यह एक अच्छा कदम था परन्तु जिस प्रकार की क्षुद्र राजनीति देश में चल रही है उसमें आयोग के गठन का विरोध के लिए विरोध भी हुआ।

जहां तक अखिल भारतीय विधार्थी परिषद का प्रश्न है वह 'संविधान समीक्षा' की पक्षधर तो है ही, वह तो 'संविधान परिवर्तन' पर भी देश में एक बहस चलाना चाहती है और इससे भी आगे बढ़कर वह 'व्यवस्था परिवर्तन' की बहस देश में चाहती है। अभाविप ने तो इस बहस का आह्वान 1988 में ही कर दिया था पर बीच के वर्षों में इस पर अधिक जोर नहीं दिया जा सका। परन्तु अब समय आ गया है कि यह बहस होनी ही चाहिए। एक जीवंत समाज व प्रजातांत्रिक देश में राष्ट्रजीवन के महत्वपूर्ण मुद्दों पर बहस होना और भी स्वाभाविक और आवश्यक हो जाता है।

'संविधान परिवर्तन' व 'व्यवस्था परिवर्तन' दो जुड़े हुए परन्तु भिन्न विषय हैं। दूसरा विषय व्यापक है और उसमें पहला समाहित हो जाता है। संविधान भारतीय समाज की आकांक्षाओं का कानूनी दस्तावेज है जिसके अन्तर्गत देश के संचालन व विकास हेतु विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाएँ, संस्थाएँ व नियम अस्तित्व में आये हैं। यद्यपि संविधान बनाते समय निर्माताओं द्वारा यह प्रयास किया गया कि सभी आकांक्षाएँ और राष्ट्रीय सामाजिक मूल्य उसमें व्यक्त हो एवं उनकी पूर्ति हेतु एक योग्य तंत्र खड़ा हो, परन्तु न तो राष्ट्रीय सामाजिक आकांक्षा व मूल्य एकदम जड़ विचार होते हैं और न ही उन्हें कार्यान्वित करने वाला तंत्र सर्वथा पूर्ण, दोषरहित व अपरिवर्तनीय होता है। समय व अनुभवों के आधार पर उनमें संशोधन अथवा परिवर्तन भी किये जा सकते हैं। तभी तो गत 50 वर्षों में संविधान में 90 संशोधन किये गये। और संविधान तो भारत के लोगों ने बनाया और स्वयं के लिए स्वयं को दिया है। हम भारत के लोग स्वयं को यह संविधान आत्मर्पित करते हैं, इस लिए वे जब चाहे तब उसमें संशोधन भी कर सकते हैं और परिवर्तन भी, और चाहे तो एक नया संविधान भी बना सकते हैं। इसके लिए लोगो को अर्थात् जनता को मात्र एक निश्चित प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है जो व्यवहार में सरल नहीं होती। परन्तु इस कठिनाई के कारण जनता का अधिकार कम नहीं हो जाता। वास्तविकता तो यह है कि भारत का संविधान जिन्होंने बनाया जनता ने उन्हे उस हेतु से चुना ही नहीं था इसलिए संविधान को अति पवित्र दस्तावेज कहकर उसकी समीक्षा का विरोध करने वाले जनता को गुमराह कर रहे हैं और उस के अधिकारों का हनन कर रहे हैं न कि उनकी रक्षा। उल्टे जिन्होंने संविधान समीक्षा की बात की वे ही जनता के साथ न्याय कर रहे हैं। और यदि संविधान के 50 वर्ष पूर्ण होने का अवसर समीक्षा के लिए सही नहीं है तो उपयुक्त अवसर क्या होता ?

जहां तक 'व्यवस्था' का प्रश्न है वह सभी संविधान प्रदत्त व संविधानेतर वांछनीय अथवा अवांछनीय प्रावधानों, नियमों, मूल्यों और प्रथाओं का नाम है जो समाज में रुढ़ हो जाते हैं और जिन्हें एक व्यापक मान्यता प्राप्त हो जाती है। यद्यपि संविधान के कुछ प्रावधान अवांछनीय हो सकते हैं (उदाहरणार्थ धारा 370 को बनाये रखना) परन्तु संविधान का प्रायः वांछनीय का मूर्त रूप होता है।

जब कि व्यवस्था वांछनीय एवं अवांछनीय का मिश्रण होती है। जहां संविधान त्रुटियों के बावजूद वांछनीय को व्यक्त करने वाला एक कागदी दस्तावेज होता है वहां व्यवस्था कठोर यथार्थ होती है। जब कि संविधान प्रायः उदात्त भावनाओं और तंत्र की अभिव्यक्ति करता है वहीं व्यवस्था व्यवहार में व्यक्त होने वाली योग्य व अयोग्य वास्तविकता होती है। संविधान सिद्धान्त होता है तो व्यवस्था व्यवहार।

संविधान व व्यवस्था वे अंतर को स्पष्ट करने के लिए हम दो उदाहरण लेते हैं। संविधान में छुआछूत व जातिवाद का निषेध किया गया है और उसके लिए कानूनी प्रावधान भी बनाये गए हैं परन्तु व्यवस्था ऐसी चल रही है कि जातिवाद का गंगा नाच हो रहा है। संविधान में मौलिक अधिकारों व सामान्यजन के कल्याण का प्रावधान है परन्तु व्यवस्था में व्यक्ति को मौलिक अधिकार दूर दूर तक नहीं मिलते व सामान्यजन का कल्याण एक मृगमरीचिका बना हुआ है।

चूंकि व्यवस्था एक व्यापक सारगर्भित विषय है और व्यवहारिक धरातल पर समाज का पाला व्यवस्था से पड़ता है इसलिए राष्ट्रीय सामाजिक जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए व्यवस्था परिवर्तन की बात सोचना अधिक महत्वपूर्ण है। संविधान में समीक्षा अथवा परिवर्तन तो व्यवस्था परिवर्तन का एक भाग मात्र है।

अखिल भारतीय विधार्थी परिषद चाहती है कि व्यवस्था परिवर्तन के विषय में देश में एक व्यापक बहस हो जिसके आधार पर व्यवस्था के वांछनीय और अवांछनीय तत्वों की व्यापक सहमति के आधार पर पहचान हो तथा तदनुरूप वांछनीय परिवर्तन किये जायें। इन परिवर्तनों में समाज में व्याप्त विकृतियों का उन्मूलन व सामान्यजन की दोषपूर्ण सोच का परिवर्तन भी सम्मिलित होगा। जहां तक विभिन्न विषयों पर अभाविप के अभिमत का प्रश्न है उसने अनेक विषयों पर अपनी कोई राय अभी नहीं बनाई है। अभाविप अपने संगठन में भी एक बहस करने के पश्चात् ही अभिमत व्यक्त करेगी। केवल चर्चा हेतु व्यवस्था परिवर्तन के कुछ मुद्दे, कुछ सुविचारित और कुछ तदर्थ अभिमत नीचे व्यक्त किये जा रहे हैं:-

1. संविधान एवं व्यवस्था में भारतीय जीवन मूल्यों का यथोचित समावेश – भारत एक प्राचीन राष्ट्र है जो अनेक श्रेष्ठ जीवन मूल्यों एवं समृद्ध संस्कृति व सभ्यता के आधार पर विश्वगुरु कहलाता रहा है। यह विचार होना चाहिए कि वे मूल्य क्या हैं (उदाहरणार्थ आध्यात्मिकता, संयमित भौतिकता, परिवार रचना, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विधि-निषेध आदि) और क्या हमारी व्यवस्था और संविधान उनके आधार पर बने हैं ?
2. भारतीय 'राष्ट्र' की परिभाषा – प्राचीन भारत अनेक राज्यों से बना राष्ट्र था जब कि गत कुछ शताब्दियों में राष्ट्र राज्य की अवधारणा मान्य हुई है। क्या भारत में वही मान्य होनी चाहिए ?
3. गत 50-52 वर्षों में भारत की महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं जैसे विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका अथवा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक व्यवस्थाओं की अपूर्णताओं व विकृतियों के परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, गरीबी, विषमता, भ्रष्टाचार, हिंसाचार, जातिवाद, राजनीतिक अनैतिकता व आंतरिक व बाह्य असुरक्षा जैसी समस्याएँ और गम्भीर हुई हैं। उपरोक्त अपूर्णताओं, विकृतियों एवं समस्याओं के निराकरण की प्रभावी योजना बनाना समय की सबसे बड़ी मांग है।
4. देश में एक व्यापक भ्रम निर्माण हुआ है कि राष्ट्रीय प्रगति सरकार का काम है। राजनीतिज्ञों ने स्वार्थवश इस शारणा को बल प्रदान किया है। इस बात की आवश्यकता है कि राष्ट्र-निर्माण में गैर सरकारी प्रयत्नों, जन संगठनों व व्यापक जन चेतना की

भूमिका के महत्व को समझा जाये व सामान्य नागरिक की औसत सामाजिक चेतना के स्तर को बढ़ाने पर विशेष बल दिया जाये।

5. जनमत/जनसंवाद – सैद्धांतिक रूप में जनमत गणतांत्रिक व लोकतांत्रिक प्रणाली का मूल आधार होता है परन्तु इस सिद्धान्त को व्यवहार में उतारने के लिये कोई व्यवस्थाएँ व नियम बनाने पड़ते हैं। जहाँ एक ओर व्यक्ति को अपना मत व्यक्त करने और प्रतिनिधि चुनने का अधिकार देना होता है वही जन चेतना वृद्धि व जनमत परिष्कार की व्यवस्था भी आवश्यक होती है। दोनों कार्य प्रभावी रूप से तभी संभव होते हैं जब जनसंवाद की समुचित व्यवस्था हो। मीडिया व जनसंगठन इस संवाद में मुख्य भूमिका निभाते हैं। परन्तु चारों ओर देखने पर हम पाते हैं कि प्रभावी जनसंवाद नहीं हो रहा। इसीलिए यह भी विचार होना चाहिए कि जनसंवाद को और अधिक निर्दोष कैसे बनाया जाये।

## संविधान व कानूनो में समबन्धी मुद्दे

1. यदि भारतीयजन नया संविधान चाहें तो उसके लिए क्या प्रक्रिया हो ?
2. संविधान की प्रस्तावना में भारत को 'सेक्यूलर' गणतंत्र घोषित किया गया है। 'सेक्यूलर' की यथोचित व्याख्या आवश्यक है।
3. संविधान की धारा 1 में देश को 'इण्डीया दैट इज भारत' एवं 'युनियन ऑफ स्टेट्स' कहा गया है। उसमें परिवर्तन कर देशको Bharat Rashtra i.e. India nation comprising of many status
4. सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के 'मौलिक ढांचे' की अवधारणा को जन्म दिया था। उसकी व्याख्या सुनिश्चित करना। मौलिक अधिकारों की समीक्षा, उनमें शिक्षा, रोजगार व सूचना के अधिकार को जोड़ना? मौलिक दायित्वों की समीक्षा।

## ५. कार्यपालिका

(अ) क्या भारत में राष्ट्रपति प्रणाली की आवश्यकता है ?

(आ) राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रीमण्डल, मंत्रियों आदि के अधिकारों / दायित्वों की समीक्षा। उसी प्रकार राज्य व निचली इकाईयों के ऐसे ही अधिकारियों के अधिकारों व दायित्वों की समीक्षा।

(इ) शीर्ष पदों पर विदेशी मूल के नागरिकों हेतु प्रतिबंध ?

(ई) नौकरशाही-विविध अधिकारियों के अधिकारों व दायित्वों की समीक्षा।

(द) विकेन्द्रीकरण, प्रशासन की जवाबदेही व पारदर्शिता, गोपनीयता नियमों की समीक्षा आदि।

## 6. विधायिका

(अ) संसद, विधानमण्डलो व निचली विधायिकाओं के अधिकारों व गठन की समीक्षा। क्या उच्च सदनों की आवश्यकता है? सदस्यों की अर्हताएँ? प्रतिनिधित्व के वर्तमान स्वरूप की समीक्षा। व्यवसाय अथवा अन्य आधारों पर प्रतिनिधित्व Funetuinai Repesantation उदाहरणार्थ गैर सरकारी संगठनों, शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों, धर्मगुरुओं के प्रतिनिधि ?

(आ) चुनाव प्रणाली- संपूर्ण चुनाव प्रणाली की समीक्षा, चुनाव सुधार, विकृतियों का उन्मूलन।

## 7. न्यायपालिका

न्यायिक संस्थाओं के ढांचे की समीक्षा। न्याय में होने वाली देरी के निराकरण की समुचित व्यवस्था।

8. राज्यों का पुनर्गठन- कम प्रशासनिक खर्च वाले छोटे व अधिक राज्यों की स्थापना।

9. देश की संपर्क भाषा / राज्य भाषा व राष्ट्र भाषा की सुनिश्चिता।

10. संविधान के अनेक विवादस्पद प्रावधानों की समाप्ति अथवा उनमें यथोचित परिवर्तन (उदाहरणार्थ धारा 370, धाराएँ 29 व 30 एवं धारा 335 आदि)

11. निजी संपत्ति, विशेषकर भूमि के अधिकार सम्बन्धी मर्यादाएँ।

12. देश से होने वाले प्रतिभा पलायन को रोकने के उपाय।

13. अंग्रेजी प्रशासन द्वारा थोपे गये अथवा कालबाह्य हो गये नियमों और कानूनों में परिवर्तन (उदाहरणार्थ- सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, जेल कानून, वकील का काला कोट आदि)।